International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070
Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialsciencejournal.in
Volume 3; Issue 12; December 2017; Page No. 50-52

निर्माण स्थल का चयन एवं वास्तु पुरूष मण्डल

प्रीति[१], डॉ० प्रभात कुमार[२]

[१] शोधार्थीनी, प्रा०भा०इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।

[२] प्रोफेसर, प्रा०भा० इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।

प्रस्तावना

हमारे प्राचीन शास्त्रों के अनुसार अपने मन में सर्वप्रथम कलात्मक रूपों की रचना करना और फिर अने हाथों द्वारा निर्मित करना एक विज्ञान है और इस विज्ञान को शिल्प रूप में जाना जाता है। इनमें दिये गये नियमों को शिल्पशास्त्र कहा गया है। भगवत में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है –'विज्ञान शिल्प नैपुण्य'। शिल्पशास्त्र का एक भाग वास्तु शास्त्र अथवा गृहवास्तुशास्त्र है। जबकि दूसरे भाग है–नौकाशिल्प, रथशिल्प, विमानशिल्प, दुर्गशिल्प, नगरशिल्प, यंत्रशिल्प, सैन्यशिल्प, अयस् या धातुशिल्प, काष्ठशिल्प, स्वर्णशिल्प, मूर्तिशिल्प, यज्ञशिल्प।

देवताओं और मानवों के आवास को वासु कहते है, यह भूमि, प्रासाद, यान और शयन से मिलकर बनता है।

१. स्थल का वह विस्तार जिस पर रहने या कार्य करने के लिए भवन बनाया जाता है, भूमि है
२. भूमि के ऊपर तथा उसकी सीमा में जो भवन, अहाते की दीवार या अन्य संरचना बनायी जाती है प्रासद कहलाती है।
३. रथ, गाडी, विमान, नौका आदि जो भूमि पर रखे जाते है उन्हें यान कहते है।
४. अन्य वस्तुऐं जैसे चारपाई, कुर्सी–मेज, अलमारी, सोफा आदि को शयन कहते है। उपर्युक्त चारों वस्तुए भूमि पर रखी जाती है, भूमि को वस्तु कहते है। भूमि पर निर्मित प्रासाद, यान, फर्नीचर और भूमि सबकों सम्मलित रूप से वास्तु कहते है। इस सम्बन्ध में बनाये गये विमानों और मार्ग निर्देशक सिद्धान्तों को वास्तुशास्त्र का नाम दिया गया है।

वास्तुशास्त्र का विभेद

वास्तुशास्त्र को दो भागों में विभाजित किया गया है–

१. **देव शिल्प**–मूर्ति, यज्ञ, यज्ञकुण्ड आदि धार्मिक कार्यो और मंदिरों के सभी पहलुओं से सम्बन्ध रखता है।
२. **मानवशिल्प**– मकानों, अन्य आवासीय भवनों, पाठशालाओं, धर्मशालाओं, होटलों कार्यस्थलों आदि से सम्बन्धित है।

देवशिल्प

देवालय या मंदिर का निर्माण करना एक धार्मिक और पवित्र कार्य है। मंदिर एक ऐसी संरचना है जो परिरूप (डिजाइन) के संतुलन और परस्पर संबंधित विस्तार पर निर्भर करती है। मंदिर पर निर्भर करती है। मंदिर में कुछ मूल तत्व इस प्रकार के होते है जैसे–गर्भगृह, जहां मंदिर के प्रमुख देवता की प्रविष्ठा की जाती है। भक्तों के लिए देवता का ध्यान रखते हुए परिक्रमा करने के लिए प्रदक्षिणा पथ होता है। गर्भगृह के ऊपर जो मीनार जो बुर्ज होता है उसे शिचार, गोपुरम अथवा विमान कहते है और यह प्रमुख देवता की विश्वव्यापी सत्ता तथा सर्वोच्य ऐश्वर्य का प्रतीक होता है। गर्भगृह एक आयताकार कक्ष में खुलता है। मण्डप स्तम्भों पर खडा एक सभा भवन (हॉल) होता है।

मानवशिल्प

भवनों का परिरूप (डिजाइन) केवल भोजन करने, सोने, कार्य करने, मनोरंजन करने आदि के उद्देश्य से ही नही, किन्तु अपने जीवन के बारे में अधिक विस्तृत परिप्रेक्ष्य और उसकी परिपूर्णता पर विचार करते है हुए अन्य मानवीय अभिव्यक्ति करता है, उसके सही समाधान के लिए सम्बन्धित व्यक्तियों की जीवन शैलियों के बारे में भी जानकारी होनी चाहिए। वास्तुकार को तकनीकी अध्ययन के अतिरिक्त धर्म और दर्शन का प्रर्याप्त ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी, परम्परा तथा रीति–रिवाज संगीत, नृत्य, तथा अन्य कलाओं और खेल–कूदों का ज्ञान होना चाहिए।

वास्तु के सिद्धान्त

वास्तु कला के निम्नलिखित सिद्धान्त है–

१. दिक् निर्णयः दिशाओं का सिद्धान्त
२. वास्तु–पद–विन्यासः निर्माण स्थल योजना, वास्तुपुरूष मण्डल
३. मानः हस्तलक्षण–भवन की अनुपातिक माप
४. आयादि सद्वर्ग–वैदिक वास्तुकला के छः सिद्धान्त
५. पताका आदि सच्छंद– भवन का स्वरूप, उसकी अभिमुखता और परिदृश्य आदि।

निर्माण स्थल का चयन

किसी भी भवन के लिए उसका निर्माण स्थल (क्षेत्र) मूल आवश्यकता होती है और उसके चुनाव में सबसे अधिक सावधानी रखनी चाहिए। सामान्यतः निर्माण स्थल का चयन करने के बाद (डिजाइनिंग) परिरूप बनाने के लिए वास्तु शिल्पी को उस स्थल पर लाया जाता है, परन्तु निर्माण स्थल खरीदने के समय से ही उसकी सलाह ली जानी चाहिए। यह अधिक लाभपद्र रहेगा। निर्माण स्थल का चयन करते समय निम्नलिखित पक्षों का ध्यान दिया जाना चाहिए–

१. **मिट्टी की किस्म**– मिट्टी का वर्गीकरण उसके रंग जैसे ईंट का लाल, गहरा भूरा, सफेद, पीला मिश्रित रंग, काला आदि से करने के अलावा उसकी गंध स्वाद बनावट आदि के अनुसार किया जाता है। काली या चिकनी मिट्टी निर्माण के लिए अच्छी नही होती और नींव के आधार पर परिरूप बनाते समय मिट्टी का भारवहन करने की शक्ति को निश्चित रूप से पता लगा लेना चाहिए। बडे गोल पत्थरों, दीमकों की बांबी वाले, अथवा जहां हत्या हो चुकी हो, शव को दफनाया जा चुका हो जहां मिट्टी ढीली हो या जिसमें मिट्टी भरी गयी हो, ऐसे निर्णय स्थलों से बचना चाहिए।

२. **स्थान और वातावरण**– जहां तक सम्भव हो निर्माण स्थल की सतह पर एक समान स्तर की होनी चाहिए। यदि वह ढालू हो, तो वह उत्तर और पूर्व दिशा अथवा उत्तर –पूर्वी दिशा में हो। जैसा कि प्रायः कस्बों और नगरों में होता है। यदि निर्माण स्थल छोटा है तो वहां पास में कोई खडे वृक्ष जैसे पीपल, आम, बरगद, इमली के नही होने चाहिए, क्योंकि उनकी जडे और शाखायें इमारत को नुकसान पहुंचा सकती है। यदि निर्माण स्थल बडा है तो इमारत या भवन का क्षेत्र उनमें पर्याप्त दूरी पर होना चाहिए। उपजाऊ मिट्टी वाली फूलों और फलों के पेडों वाली घास से ढकी आदि भूमि निर्माण स्थल के लिए अच्छी होती है। ऐसी भूमि से बचना चाहिए जिसमें भू-जल नही हों। मंदिरों, आश्रमों स्कूल-कॉलेजों, कल्याण मंडपों से सटी भूमि पर आवास बनाने के स्थल की सलाह स्पष्ट कारणों से नही दी जाती है। विष्णु मंदिर के पीछे या दुर्गा मंदिर के बांयी ओर आवास निर्माण अच्छा नही होता है, शिव मंदिर से आवास स्थल कम से कम ५० मीटर दूर होना चाहिए।

३. **भूखण्ड या वास्तु**– भूखण्ड का आकार, कोण, रूप आदि वास्तु के सिद्धान्त के अनुसार होने चाहिए। शहरों और कस्बों में अनेक कारणों से चयन करने की सीमाऐं होती है, लेकिन जहां तक संभव हो शास्त्रों के अनुसार समस्त स्थल प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

४. **भूखण्ड का आकार**– निर्माण स्थल का चयन करने में भूखण्ड का आकार एक महत्वपूर्ण भूमि का निभाता है। मकानों, उद्योगों, व्यापारिक संस्थानों और आवासीय कमरों हेतु भूखण्ड के बारे में वास्तु के सिद्धान्त समान ही है, सिवाय भूखण्ड की माप के जो भिन्न होती है।

अ. भूखण्ड वर्गाकार या आयताकार होने चाहिए (आयताकार होने की स्थिति में चौडाई का लम्बाई से अनुपात १ : २ से अधिक नही होनी चाहिए) उत्तर और दक्षिण की तुलना में पूर्व तथा पश्चिम का विस्तार अधिक होना चाहिए, परस्तु ऐसे बडे भूखण्ड से बेहतर कुछ नही है, जिसमें चारों ओर खाली स्थान छोडे जा सकें।

ब. त्रिकोणाकार, गोलाकार, पांच किनारें वाला, षडभुजाकार, अष्टभुजाकार, बहुभुजाकार भूखण्ड जिनका आकार भद्दा और असमाकृति हो, अच्छी नही होते।

स. ''गोमुखी'' आकार का भूखण्ड जिनके सामने के भाग की चौडाई पिछले भाग से कम होती है, भावनात्मक कारणों से अच्छा नही होता, लेकिन इसके साथ ही यह आवश्यक है कि सडक केवल दक्षिण या पश्चिम की दिशा में हो पूर्व या उत्तर में नहीं।

द. व्याघ्रमुखी आकार का भूखण्ड जिनके सामने के भाग का विस्तार पिछले भाग से बडा होता है, अच्छा नही होता। परन्तु यदि ऐसे भूखण्ड के पूर्व में और उत्तर में सडकें हो तो ठीक होता है।

य. भूखण्ड के विभिन्न किनारों के कोण भी उसने गुणों को निश्चित करने में समान रूप से महत्वपूर्ण होते है।

भूखण्ड के कोण

यदि चारों कोण 90° के हो तो अच्छा होता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि दक्षिण पश्चिम कोण 90° का या उससे कम हो इससे अधिक नही। उत्तर पश्चिम कोण 90° के लगभग या उससे अधिक नही होना चाहिए, लेकिन कम कभी नही। उत्तरी-पूर्वी कोण को भी लगभग ९०° के करीब या कम होना चाहिए परन्तु (90°) इससे अधिक नही।

सडक के सम्बन्ध में भूखण्ड की स्थिति

वास्तुशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार, भवन, निर्माण स्थल या भूखण्ड के आगे के भाग की दिशा और सडक की स्थिति उस भूखण्ड का महत्व निश्चित करती है और उन भूखण्डों का नाकरण उसी के अनुसार होता है।

वास्तु पुरूष मण्डल

वास्तु– चारों ओर की परिस्थितियों या परिवेश या प्रकृति से है। संस्कृत में प्रकृति को वास्तु कहते है।

पुरूष– पुरूष का अर्थ होता है ऊर्जा, कार्यशक्ति, बल या आत्मा तथा संस्कृति में शक्ति

मण्डल– मण्डल का अर्थ होता है, ज्योतिष के अनुसार ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति में जो दिशा निर्धारण से संबंधित है।

भागवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा–
भूमिरापोऽनलो वायुः खं सनो बुद्धिरेब च।
अहंकार इतीयं से भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। (अध्या० ७-४)

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी प्रकृति है।

अपरेयमितस्वन्यां प्रकृति विद्धि में पराम्।
जीवभूतां महाबाहों ययदं धार्यते जगत्।।(अध्या० ७-५)

जिस आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा अर्थात् मेरी जड प्रकृति है और हे महाबहो! इसमें दूसी को, जिसमें यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृकति जान।

प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।। (अध्याय ९-८)

अपनी प्रकृति को (जो सत्व, रजस और तामस गुणों से बनी है) अंगीकार करके स्वभाव के बल पर स्वतंत्र पर परतंत्र हुए इस संपूर्ण (अस्तित्व) भूतसमुदाय को बार-बार उनके कर्मो के अनुसार रचता हूं।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते।। (अध्याय ९-१०)

'हे कुंती पुत्र (अर्जून) मुझ अधिष्ठाता के सकाश (सीधे निरीक्षण में) प्रकृति चर और अचर सहित सर्व जगत को रचती है और इस हेतु से ही यह संसार चक्र घूम रहा है।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरूच्यते।
पुरूषः सुखदः खानां भोक्तृत्वे रूच्यते।। (अध्याय ९-१०)

कार्य (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध-इनका नाम कार्य है) और करण (बुद्धि, अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा-इन १२३ का नामकरण है) को उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कहीं जाती है और जीवात्मा सुख-दुख के भोक्तापन में अर्थात में हेतु कहा जाता है।

वास्तुपुरूष की विशेषताए

ब्रह्मा देवता दिया गया नाम वास्तु पुरूष अथवा वासुदेव तीन मुख्य विशेषताएं रखता है और वे है (१) चर वास्तु, (२) स्थिर वास्तु तथा (३) नित्य वास्तु

चर वास्तु

इसमें वास्तुपुरूष की दृष्टि से रूख भाद्रपद, (अगस्त-सितम्बर), अश्वयुज व कार्तिक (अक्टुबर-नवम्बर) महीनों की अवधि में दक्षिण की ओर होगा।
मार्गशीर्ष (नवम्बर-दिसम्बर), पुष्य (दिसम्बर-जनवरी) और माघ (जनवरी-फरवरी) महीनों में पश्चिम की ओर, फाल्गुन (फरवरी-मार्च), चैत (मार्च-अप्रैल) और बैशाख (अप्रैल-मई) महीनों में उत्तर की ओर होगा।
निर्माण कार्य का आरम्भ, शिलान्यास और मुखद्वार की स्थापना ऐसे स्थान पर होनी चाहिए जो वास्तुपुरूष की दृष्टि की ओर हो, ताकि उस मकान, भवन में मनुष्य सरलता और आराम से रह सके। स्वस्थ और दीर्घायू हो और शांति एवं संपन्नता प्राप्त करें।

स्थिर वास्तु

उसका सिर सदैव उत्तर पूर्व की ओर, पैर दक्षिण-पश्चिम की ओर, दाहिना हाथ उत्तर-पश्चिम की ओर तथा बायां हाथ दक्षिण-पूर्व की ओर रहेगा और इस तथ्य को, मकान का डिजाइन बनाते हुए दरवाजे और खिडकियों का स्थान निश्चित करते समय, कडियों को लगाते हुए (लकडी का ऊपरी सिरा उत्तर-पूर्व की ओर रहे) तथा फर्श और छत की सतह लगाते हुए ध्यान में रखना होगा।

नित्य वास्तु

प्रत्येक दिन प्रातःकाल के प्रथम तीन घंटों (प्रथम जाव) में उसकी दृष्टि पूर्व की ओर रहेगी, इसके तीन घंटे बाद तथा दक्षिण की ओर उसके तीन घंटे बाद तक पश्चिम की ओर तथा अंतिम तीन घंटों के बाद उत्तर की ओर और भवन से संबंधित नित्य-प्रति का कार्य इसी दिशभिमुखता के अुनसार होना चाहिए।

वास्तुपुरूष की तीन अवसरों पर पूजा की जानी चाहिए। निर्माण समय की अवधि में अर्थात् आदि में (शिलान्यास प्रारम्भ करते समय) मध्यम में (मुख द्वार लागते हुए) तथा अंत में (गृह प्रवेश) में।
वास्तुशास्त्र में इस बात पर बहुत बल दिया गया है कि विशेष अवसर की अवधि में मुख्यद्वार उस ओर होना चाहिए जिधर वास्तुपुरूष की दृष्टि है और इस द्वार में गृहप्रवेश उस समय होना चाहिए जब वास्तु पुरूष की दृष्टि ठीक सामने हो।
प्रवेश द्वार ईशान कोण (उत्तर-पूर्व दिशा) में होना चाहिए। आग्नेय कोण (दक्षिण-पूर्व) में रसोई होनी चाहिए। वायव्य (उत्तर-पश्चिम) में आनाज आदि रखने का स्थान चाहिए। दक्षिण पश्चिम में अर्थात् नैऋतय में औजारों, उपकरणों, प्रसाधन आदि को रखने का स्थान होना चाहिए। उपरोक्त विशेषताओं से युक्त निर्माण योजना सदैव कल्याणकारी होती है।

संदर्भ

१. समरांगण सूत्रधार, वास्तु शास्त्रः डॉ० बिजेन्द्रनाथ शुक्ल
२. प्राचीन भारत में नगर नियोजनः उदयनारायण राय, लोक भारती प्रकाशन
३. हिन्दी विश्व कोश
४. भारतीय वास्तुशास्त्र का कालक्रमिक विकासः विद्याधर सिंह
५. भारतीय वास्तुशास्त्र का इतिहासः कृष्णदत्त वाजपेयी, हिन्दी समिति, भवल, लखनऊ
६. प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तुः डॉ० पी०के० अग्रवाल
७. वास्तुशास्त्र अनुसार भवन निर्माणः डी मुरलीधर राव।
८. भगवद्गीता।